प्रार्थना

हे नाथ अब तो ऐसी दया हो, जीवन निरर्थक जाने न पाये।
यह मन न जाने क्या-क्या दिखाये, कुछ बन न पाया मेरे बनाये।।

संसार में ही आसक्त रहकर, दिन रात अपने मतलब की कह कर।
सुख के लिए लाखों दुःख सहकर, ये दिन अभी तक यों ही बिताये।।

ऐसा जगा दो फिर सो न जाऊँ, अपने को निष्काम प्रेमी बनाऊँ।
मैं आपको चाहूं और पाऊँ, संसार का कुछ भय रह न जाये।।

वह योग्यता दो सत्कर्म कर लूँ, अपने हृदय में सद्भाव भर लूँ।
नर तन है साधन भव सिंध तरलूँ, ऐसा समय फिर आये न आये।।

हे प्रभू हमें निरभिमानी बना दो, दारिद्र हर लो दानी बना दो।
आनन्दमय विज्ञानी बना दो, मैं हूँ 'पथिक' यह आशा लगाये।।

जन हितार्थ पुनः प्रकाशित
श्री राम नवमी संवत २०६७, सन २०१०

साधुवेश में एक 'पथिक' की अनुपम कृति

जीवन निर्माण की साधना

प्रार्थना

हे प्रेममय प्रभु ऐसी दया हो,
जीवन निरर्थक जाने न पाये।
जब तक अविद्या अज्ञान में हम,
कुछ बन न सकता मेरे बनाए।।
ऐसा जगा दो फिर सो न जायें,
साधक बने प्रेम प्रज्ञा जगायें।
ममत अहंता को त्याग पायें,
भय भ्रान्ति दुःख कुछ भी रह न जाये।।
वह योग्यता दो सेवा करें हम,
कष्टों के सन्मुख धीरज धरें हम।
अपना हृदय सद्गुण से भरें हम,
मन में न कोई दुर्भाव आये।।
तुमने दयामय नरतन दिया है,
यह बुद्धि दी है, यह मन दिया है।
निज पूर्णता का साधन दिया है,
उपयोग की विधि सद्गुरू बतायें।
हे प्रभु हमें निरभिमानी बना लो,
धन मान श्रम के दानी बना लो।
सर्वत्र अपना ध्यानी बना लो,
हम हैं 'पथिक' यह आशा लगाये।।

साहित्य मंगाने का पता

डा० जे० एल० सूरी
डा० ताराचन्द्र क्लीनिक
28 विधान सभा मार्ग
निकट बार्लिंगटन चौराहा, लखन
मो - 9415062640
फोन - 0522-4048520

❖ ❖ ❖

स्वामी नानानन्द
संत पथिक साधना आश्रम
हरिपुर, रायवाला, हरिद्वार उ रांचल
फोन - 0135-2485725

डा० स्वामी अखिलेन्द्र
बंगाली टोला, बेलन बाजार
मुंगेर बिहार
फोन - 06344-222232

❖ ❖ ❖

अवधेश नारायण अग्रवाल
अग्रवाल गिफ्ट गैलरी
चौक, बहराइच उ०प्र०
फोन - 05252-237977
मो - 09336881137
09453017520

❖ ❖ ❖

भक्त बद्रर्स
श्री रामकृष्ण पार्क, अमीनाबाद, लखन - 226 018
फोन - 0522–6570333, 6531333 मो. – 9415418811

❖ ❖ ❖

मध्य प्रदेश के जो पाठक श्री स्वामी पाथिक जी का साहित्य लेना चाहें कृपया नीचे लिखे पते पर सम्पर्क करें:–
श्री विष्णु जी अग्रवाल
अग्रवाल बुक सेलर, एम.आई.जी.–21, दीन दयाल पुरम
पो०–खण्डुआ–पिन–450001 म०प्र०
दुकान मो०- 9407455034 निवासः मो०- 09407457977

Website : www.pathikji.net

प्रार्थना

प्रार्थना साधक के विकास का अचूक उपाय है
तथा आस्तिक प्राणी का जीवन है

मेरे नाथ!

आप अपनी सुधामयी, सर्व–समर्थ,
पतितपावनी,
अहैतुकी कृपा से, दुखी प्राणियों के दय में
त्याग का बल एवं सुखी प्राणियों के दय में
सेवा का बल प्रदान करें,
जिससे वे सुख–दुखः के बन्धन से मुक्त हो,
आपके पवित्र प्रेम का
आस्वादन कर
कृतकृत्य हो जायँ

आनन्द! आनन्द! आनन्द!

मैं नहीं, मेरी नहीं

मैं नहीं, मेरा नहीं, यह तन किसी का है दिया।
जो भी अपने पास है, वह धन किसी का है दिया।।१।।
देने वाले ने दिया, वह भी दिया किस शान से।
“मेरा है” यह लेने वाला, कह उठ अभिमान से ।।२।।
मैं नहीं, मेरी नहीं, यह तन किसी का है दिया।
‘मैं–मेरा’ यह कहने वाला, मन किसी का है दिया।।३।।
जो मिला है वह हमेशा, पास रह सकता नहीं।
कब बिछुड़ जाये यह कोई राज़ कह सकता नहीं।।४।।
ज़िन्दगानी का खिला मधुवन, सब किसी का है दिया।
मैं नहीं, मेरी नहीं, यह तन किसी का है दिया।।५।।
जग की सेवा, खोज अपनी, प्रीति उनसे कीजिये।
जिन्दगी का राज़ है, यह जानकर जी लीजिये।।६।।
साधना की राह पर, यह साधन किसी का है दिया।
जो भी अपने पास है, वह सब किसी का है दिया।।७।।
मैं नहीं, मेरा नहीं, यह तन किसी का है दिया।

ॐ

जीवन निर्माण की साधना

लेखकः
साधु वेश में एक पथिक
संत की एक अनुपम कृति

गागर में सागर

सहयोग राशि 5/- रुपये

साजन्य सेः–
संजीव कुमार साहनी
न्यू इण्डियन ट्रान्सपोट कारपोरेशन
ऐशबाग रोड, लखनऊ-226 004

प्रार्थना

जाही विधि राखे प्रभु ताही विधि रहना है।। जाही..।।
तन मन धन कुछ अपना न मान कर
जो भी आये जाये सब प्रभु का ही जानकर।
मन की प्रतिकूलता को धैर्य से ही सहना है ।। जाही..।।
बन्धन दुखों की जड़ आत्म अज्ञान है
आत्म ज्ञान होता जब स्वयं में ही ध्यान है।
ध्यानी को धन मान भोग नहीं चाहना है।। जाही..।।
चाह के त्याग में प्रेम ही समर्थ है।
चाह की पूर्ति का लोभ ही अनर्थ है।
जीवन प्रवाह है प्रेम से ही बहना है।। जाही।।
प्रेम में सेवा की त्याग की शक्ति है
प्रेम में परमगति मिलती प्रभु भक्ति है,
प्रेम में ‘पाथिक’ नित्य समता को गहना है।। जाही।।

श्री परमात्मने नमः

आरम्भ सुधार के मूल मन्त्र

जिससे प्राणी की प्रगति, उन्नति, सद्गति, परमगति सुगम होती जाये, वही सुन्दर जीवन की साधना है। जो निर्मल हो, निर्दोष हो, आकर्षक हो, सुखद हो, हितकर हो और सत्य से विमुख न बनाये वही सुन्दर है।

प्रत्येक मनुष्य को जिस समय जो कुछ करना चाहिये, उसमें देरी न लगाकर उसे उसी समय करना यही प्रगति के लिए शुभ मुहूर्त है।

मनुष्य के जीवन में जितने भी आरम्भ हैं, उन्हें विधिवत सम्हालते रहना उन्नति के लिये सुलक्षण है।

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन के दिवस का आरम्भ प्रातः काल से देखता है और उसी समय से उसके दैनिक कृत्यो का भी आरम्भ हो जाता है। जो मनुष्य बालक, विद्यार्थी प्रातः काल के आरम्भ को न देखे और उस समय सोता रहे वह अपने दैनिक कृत्यों का आरम्भ निश्चित समय में नहीं कर सकेगा। इसका दुष्परिणाम

दिवस के अन्त तक चलता रहेगा, क्योंकि प्रत्येक कार्य पिछड़ेगा या फिर कुछ कार्य छूट ही जायेगा। इसी प्रकार जो मनुष्य जीवन के आरम्भ में बाल्यावस्था में शक्ति संचय का आरम्भ, विद्याध्ययन का आरम्भ, सदाचार शिष्टचार का आरम्भ विधिवत न करेगा उसका दुष्परिणाम पीछे—पीछे चलेगा।

बाल्यावस्था के आरम्भ से ही विद्याध्ययन में तत्पर रहना, सदाचार एवं दूसरों के प्रति यथोचित शिष्टाचार में भूल न करना, सद्गति की साधना है।

मनुष्य अपने दैनिक आचार से दुर्गति या सद्गति प्राप्त करता है। आलसी प्रमादी, दुर्व्यसनी, अभिमानी मूर्ख ही सदाचार, शिष्टाचार की अवहेलना करता है।

कुसंग कुशिक्षा दुर्बुद्धि से दुराचार का आरम्भ होता है और सुसंग सद्शिक्षा सुबुद्धि से सदाचार का आरम्भ होता है।

दुराचार का मुहूर्त कुविचार है और सदाचार तथा शिष्टाचार का शुभ मुहूर्त सद्विचार है। सद्विचार से ही जीवन की सुन्दरता का आरम्भ होता है।

सुसंग और सुसंस्कारों से ही सद्विचार पुष्टित होते हैं।

प्रत्येक बुद्धि प्रधान व्यक्ति को अपने जीवन का सुन्दर निर्माण करने के लिये कुसंग से अथवा अशिष्ट उद्दण्ड इच्छाकारी मिथ्याभिमानी व्यक्ति के सम्बन्ध से बचते रहना चाहिए।

आरम्भ में ही अशुभ का त्याग और शुभ का ग्रहण बहुत सुगम है। जो आरम्भ में शुभ— अशुभ का विचार न करकेअ शुभक ोस्थानद`द`ताह",अ ागेच लकरउ से निकालना दुष्कर हो जाता है।

वही सौभाग्यशाली है, जो आरम्भ से ही सावधान रहकर,स ुन्दरज ीवनक`प्र तिअ ाकर्षितह ोकर,अ शुभ और असुन्दर की ओर से मुख फेर लेता है।

मनुष्य के मन में जैसा चित्र भर जाता है वैसा ही स्वयं को बनाता है। शुभ या अशुभ चित्र के अनुरूप ही उसका आन्तरिक चरित्र होता है।

जिसका चरित्र पवित्र है, उसी का जीवन आदर्श है, सुन्दर है। वे मूढ़ बुद्धि के मनुष्य हैं, जो वाण चित्र में मोहित होते हैं, परन्तु चरित्र पर ध्यान नहीं देते।

बुद्धिमान विवेकी चित्र में ही नहीं अटकते, वे चरित्र को महत्व देते हैं।

जब तक सच्ची शिक्षा प्राप्त नहीं करता। तन से, वाणी से, मन से, किसी प्रकार का पाप न करना और शक्ति, योग्यता द्वारा पुण्यों को संचित करना–यही सभी ज्ञान–प्राप्त गुरूजनों की शिक्षा है।

पाप–पुण्य

पाँच पाप शरीर से होते हैं–

1. हिंसा 2. चोरी 3. व्यभिचार 4. अकड़कर चलना 5. व्यर्थ चेष्ठा में शक्ति नष्ट करना

पाँच पाप वाणी से होते हैं–

1. झूठ बोलना 2. पर निन्दा 3. कठोर वचन कहना 4. व्यर्थ पर चर्चा करना 5. अपने मुँह अपनी बड़ाई।

पाँच पाप मन से होते हैं–

1. पराये धन की इच्छा 2. दूसरों का अनिष्ट चिन्तन 3. तृष्णा कभी न तृप्त होने वाली धन, भोग, मान आदि की इच्छा 4. ोध 5. अज्ञान में अहंकार का कर्ता–भोक्ता बने रहना।

जो विद्वान अपने जीवन को अशुभ–असुन्दर से बचाकर, शुभ से सजाकर सुन्दर जीवन में देखना चाहता है, उपर्युक्त पन्द्रह पापों से बचकर, मानवता में दिव्यता लाने के लिये पन्द्रह पुण्यों को पूर्ण करता है।

देह से होने वाले पाँच पुण्य–

1. प्राणियों की रक्षा तथा यथाशक्ति सेवा करना
2. जो कुछ दूसरों के लिये सुखद है हितकर है उसका दान करना
3. सदाचार शिष्टाचार को सावधानी से पूर्ण करना
4. कर्तव्य–कमो में श्रमी रहना।
5. वीर्य–रक्षा से शरीर को पुष्ट रखना।

वाणी से होने वाले पाँच पुण्य–

1. मधुर प्रिय सत्य बोलना
2. दूसरों के गुणों की चर्चा करना
3. सम्यक् हितकर वचन बोलना
4. किसी के शुभ कर्म की प्रशंसा करना

5. परमेश्वर की महिमा का अथवा सत–चर्चा करना।

मन से होने वाले पाँच पुण्य

1. प्रिय वस्तु के दान में उदार होना।
2. सर्वस्व के दाता प्रभु को ही अपना मानना।
3. जो कुछ जितना मिला है– उसी में प्रसन्नतापूर्वक सन्तुष्ट रहना।
4. अपना अनिष्ट चाहने वाले को क्षमा करना।
5. प्रभु के नाते सभी का हित चाहना।

पाप का फल भोगकर नरक से लौटने वाले जीव पूर्व संस्कार वश पुनः पाप के ही अभ्यासी देखे जाते हैं और पुण्यक ाफ लभ ोगकरस वर्गस`ल ौटनेव ालेप ुण्यात्मा प्रारम्भ से पूर्व संस्कार वश पुण्य कमो के ही अभ्यस्त होते हैं।

उत्तम और अधम जीवात्मा के बीच में पाप–पुण्य दोनों के करने वाले मध्यम जीवात्मा होते हैं उन्हीं पर इस प्रकार की उत्तम प्रेरणा का प्रभाव पड़ता है वे ही पापों का त्याग कर पुण्यों का संचय करते हैं।

पतन के लक्षण

जो व्यक्ति क्षणिक सुखासक्ति वश ब्र मचर्य व्रत में

संयम में दृढ़ता

शक्ति सम्पन्न होने के लिए संयम की आवश्यकता है। शक्ति के प्रवाह को अपने वश में मर्यादित रखने को संयम कहते हैं।

संयम में दृढ़ रहकर शक्ति सम्पन्नता प्राप्त करने के लिएत ुमव यर्थब ातेंन क रो।ाकिसीक ीव यर्थब ातेंन सुनो। व्यर्थ भ्रमण भी न करो। भविष्य की चिन्ता भी न करो, अनावश्यक बैठे रह कर, लेटे रहकर समय नष्ट न करो। जितनी शक्ति को व्यर्थ से बचा सको, उसी के द्वारा सार्थक की पूर्ति करते रहो।

जो शुभ है आवश्यक है जिससे विद्या बढ़ती है जानकारी बढ़ती है, योग्यता बढ़ती है, जिससे पुण्य तथा सदगुण बढ़ते हैं शक्ति के रहते वही करना संयमी सदाचारी मनुष्य का दैनिक कर्तव्य है।

संयमी रहकर ही तुम नियम का पालन कर सकते हो। नियम में तत्पर रहने वाले को अधिकार की सिद्धि मिलती है।

जो व्यक्ति आलसी, प्रमादी, दुर्व्यसनी, विलासी,

सुखासक्त है, वही अनियमित है, असंयमी है।

अध्ययन करते हुए, सेवा करते हुए, प्रार्थना उपासना करते हुए जो किसी वस्तु से अथवा व्यक्ति से प्रभावित न हो, वही संयमी है।

संयम ही दैवी सम्पत्ति प्राप्त करने की साधना है। यह परम शुभ है। असंयम ही विपत्ति का कुपथ है। यह महा अशुभ है।

शरीर के हस्त पैर आदि विविध अंगों को संयम में रखने में व्यर्थ चेष्टा की आदत नहीं बनती। उसी शक्ति से सार्थक कार्य पूर्ण होते हैं।

वाणी को संयम में रखने से व्यर्थ वार्ता पर निन्दा आदि पाप नहीं बनते। सुन्दर बोलने की कला आती है और वाणी में आकर्षण रहता है।

मन को संयम में रखने से शुभ संकल्प की पूर्ति के लिये शक्ति संचित होती है। जो मन, भोग, सुखों में तथा पाप प्रवृत्ति में लगाने से घोर पतन देखता होता है, उसी मन को शुभ सुन्दर सत्य की दिशा में मोड़ देने से सद्‌गति एवं परमशान्ति सुलभ हो जाती है।

संयमी पुरुष की बुद्धि तीव्र दूरदर्शी होती जाती है। असंयमी का शरीर कहीं होता है, आँखें कहीं देखती हैं, पैर हाथ कहीं काम करते हैं और मन कुछ और ही मनन करता है। असंयमी प्रायः वर्तमान में सावधान नहीं रहकर भूत भविष्य का मनन–चिन्तन करता रहता है। इसीलिए वर्तमान में जो कुछ विधिवत् करना चाहिये या सुनना चाहिये अथवा समझना चाहिये, वह सब कुछ यथोचित रूप में नहीं कर पाता।

असंयमी की स्मृति शक्ति दुर्बल होती है। वह भूलता बहुत है। इसीलिए प्रायः हानि, असफलता और अनादर का दुःख भोगना पड़ता है।

अध्ययन करने वालों को यह गुरू सम्मति है कि यदि तुम्हें स्मृति शक्ति बढ़ानी हो तो संयम के लिये सावधान रहो, जो कुछ वर्तमान में कर रहे हो, पूरा मन लगाकर करो।

किसी को कोई वस्तु दो, तो देखकर अच्छी वस्तु दो, कभी अशुद्ध मलिन दोष–युक्त वस्तु न दो। जिस पात्र का प्रयोग करो उसे भलीभाँति देखलो। किसी वस्तु को उठाते हुए, रखते हुए आंखों से देख लो। कोई सामान

खरीदते हुए आँख से देखते रहो। किसी दुकानवाले की बातों पर विश्वास न करो, स्वयं बुद्धिपूर्वक देख लो।

भोजन करते समय एक–दो घूंट जल भले ही पी लो पर अधिक जल पीना स्वास्थ्य विधान के विपरीत है। दिन भर में दो ढाई सेर पानी पीना चाहिए।

भोजन के एक घण्टे बाद जल अवश्य पी लो। यदि दूध लेने की आदत हो तो भोजन के बीस मिनट बाद ले सकते हो।

एक बार भोजन करने के पश्चात् पांच–छह घंटे के बीच में कुछ खाने से विकार संचित होता है, वहीं कुछ समय बीतने पर रोगी बना देता है।

मल मूत्र के वेग को न रोको। सूर्य के सम्मुख होकर मूत्र त्याग न करो।

भोजन के पश्चात् अधिक श्रम करने के पश्चात् तथा जुकाम हो जाने पर, ज्वर होने पर, स्नान न करो।

भोजन करने के पश्चात् कुछ क्षण बैठकर आठ श्वास चित्त लेट कर लो। सोलह श्वास दाहिनी करवट लेटकर लो और बत्तीस स्वास बाई करवट लेटकर लो। फिर काम में लग जाओ।

आठ सोलह बत्तीस श्वास लेने के नियम की ढाई–तीन मिनटों में पूर्ति हो जाती है। आलस्यवश इस नियम की उपेक्षा न करो।

कर्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय

यदि आप बुद्धिमान हो, अपना हित चाहते हो तो सुख में आसक्त मन की बात न मानो। जो हितकर हो वही करो।

जब तुम्हें कोई मान दे, कुछ अधिकार दे, प्यार पूर्वक कोई अच्छी वस्तु दे, तुम्हारी सेवा करे, तब तुम दरिद्र न बनो, संकोच करो, किन्तु यही सब दूसरों को देते हुए कृपण न बनो। उदारतापूर्वक दो।

जब तुम्हारी बुद्धि कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय न कर सके, तब अनुभवी विवेकी धर्मनिष्ठ विद्वान की सम्मति अवश्यल ो।किन्तुए`सात भीक रस कोगेज बत ुमम` नम्रता होगी, श्रद्धा होगी, अपने में कमी प्रतीत होगी।

उद्दण्ड, अश्रद्धालु, अभिमानी, कठोर दय वालों को श्रेष्ठ विद्वान, साधु, सदाचारी दीखते ही नहीं।

हास्य–परिहास में भी तुम किसी को कटु वाक्य, अप्रिय सत्य अथवा व्यंग वचन न कहो।

किसी उद्दण्ड, अभिमानी, ूरकर्मी, हिंसक, मूर्ख, अभक्ष्य– भक्षक अथवा जिसके शत्रु अधिक हों, उससे मित्रता कदापि न करो, उनसे शत्रुता भी न करो।

प्रारब्धवश ऐसे व्यक्ति के संग रहना पड़े, तो उसके सामने शब्दों द्वारा मान ही दो। इसी प्रकार निर्वाह करो, शान्त सहिष्णु बने रहो।

तुम जितना अधिक पापों से बचने के लिए और पुण्य संचय के लिए सावधान रहोगे उतना ही अधिक असावधानी से, भूल हो जाने का, अपराधी बन जाने का पश्चाताप होगा।

अधम मनुष्य वह है जिसे भूल का या पाप प्रवृत्ति का ज्ञान ही नहीं होता। मध्यम मनुष्य वह है जिसे भूल बन जाने पर अपराध हो जाने पर तत्काल ज्ञान हो जाता है और पुनः उस पाप अपराध अथवा भूल को न दुहराने का संकल्प करता है। उत्तम बुद्धिमान मानव वह है जो भूल करते हुए, अथवा पाप अपराध होने के प्रसंग आने पर प्रथम से ही सावधान हो जाता है और वह अपराध पाप नहीं होने देता।

उत्तम बुद्धिमान विद्वान ही वाणी के वेग को, ोध के वेग को, शोक के वेग को, काम के वेग को, क्षुधा के वेग को, धैर्य के साथ रोकते हुए तत्काल ही शक्ति के

निम्नगामी प्रवाह को शुभ सुन्दर प्रसंग में बदल देता है।

यदि तुम्हारी असावधानी से, आलस्य से या अपनी इच्छा पूर्ति के सुख का पक्ष लेने से दूसरे में किसी प्रकार का क्षोभ या विकार उत्पन्न होता है, दूसरों को कष्ट होता है, उनके सुख में बाधा पड़ती है, तो यह तुम्हारे द्वारा अपराध ही माना जाएगा।

तुम इतनी ध्वनि से न बोलो, इतनी तीव्र गति से किसीक`ब ीचन हींच लो,ए`साह ास्यविनोदन क रो, जिससे दूसरों को सुविधा में बाधा पड़े, उन्हें अशान्ति हो जाए।

किसी के सामने खड़े होकर दातून नहीं करो। किसी के निकट होकर न थूको। अनेकों धर्मशालाओं में जाकर देख सकते हो कि वह मनुष्य नहीं जो दीवालों में थूकते हैं, जहाँ–जहाँ पेशाब कर देते हैं। पेशाब करने के स्थान में पहले पानी डालकर फिर पेशाब करने के पश्चात् पानी डालना चाहिए, यह भी नहीं करते। यदि तुम भी ऐसा ही करते हो तो अभी से इस भूल को सुधार लो।

तुम दीवारों में, मन्दिरों में, धर्मशाला में, शौचालयों में,

कोयला खड़िया पेन्सल से व्यर्थ अपवित्र बातें न लिखो। नीच प्रकृति के लोग ही गन्दी अनुपयुक्त बातें लिखते हैं।

उदय और अस्त होते समय व ग्रहण लगे हुए सूर्य को न देखो। गुरुजनों, ब्रा मणों अथवा तेजोमय पदार्थों के मध्य से न निकलो। बढ़ी हुई नदी में, वन में बिना मार्ग की चढ़ाई में दु:साहस न करो।

नींद टूटने पर, व्यर्थ आलस्यवश न लेटो। पूरी नींद सो लो। अधिक जागरण न करो।

दाँत वाले, सींग वाले पशुओं से तथा ओस से अथवा सामने की वायु से एवं धूप से और जल से भीगी गीली भूमि से सावधान रहकर दुष्परिणाम को देखो और बचो।

विद्वान से, अधम व्यक्ति से और उत्तम पुरुषों से विरोध न करो।

कलह की बैर को, अग्नि की चिंगारी को, किसी दोष को, दुव्यवर्सन को, चोरी को, रोग को, कुसंगति को, ऋण को, असावधानी को, थोड़ा समझकर लापरवाही से उपेक्षा न करो।

नारी की मधुर बातों से, उसके आँसुओं से, शत्रु के

सम्मान से, स्वार्थी की सेवा से मोहित होकर धोखा न खाओ, सावधान रहो।

माता, पिता, ग , गंगा गुरु को उठते ही प्रत्यक्ष में या मानसिक प्रणाम कर लो। गुरुजनों को ऐसा दण्डवत् प्रणाम या चरण स्पर्श न करो जिससे कि उन्हें बाधा हो।

जहाँ पर जाना मना लिखा हो, पेशाब करना मना लिखा हो, थूकना मना लिखा हो, जहाँ पर ध्वनि करने का निषेध हो, जहाँ फल–फूल तोड़ना मना लिखा हो, तुम यदि सभ्य हो तो अवश्य ही नियम आदेश के पालन में भूल न करो।

अनेकों युवक ऐसी जाति के होते हैं, जो लिखे हुए के विरुद्ध ही करते हैं। वे लिखे हुए को मिटाने की चेष्टा करते हैं। कहीं उल्टा ही लिख देते हैं। तुम यदि यथार्थ मानव हो तो किसी की नीच प्रवृत्ति की नकल न करो, वरन् किसी के सत्कायो का ही अनुकरण करो।

जिस कर्म से दूसरों की भावना दूषित हो किसी को कष्ट हो, असुविधा हो, घृणा हो, वह कदापि न करो।

यदि कोई मनुष्य अपनी आदत के अनुसार कहीं क्षति

पहुँचा रहा हो, कहीं अनाधिकार रूप में स्थान को दूषित कर रहा हो, तो उसे नम्रतापूर्वक मना करो, झगड़ा न करो। यदि न माने तो उस क्षति को उस अशुद्धि को तुम सम्हाल सकते हो तो अवश्य संभाल लो। एक बार महात्मा गांधी रेल यात्रा में थे, किसी ने वहीं पर थूक दिया तो महात्मा गाँधी ने अखबार के टुकड़े से पोंछ कर बाहर फेंक दिया– यह विशाल दय का परिचय है। कदाचित् तुम ऐसा नहीं कर सकते फिर भी किसी अभिमानी मूर्ख का अनुकरण तुम न करो। एक अंग्रेज का बालक मूँगफली खाकर छिलका गाड़ी के बाहर फेंकता जाता था, क्योंकि उसे ऐसी शिक्षा दी गई थी।

तुम घी–तेल की बनी हुई खाद्य वस्तुओं को कपड़ों में नहीं रक्खो, क्योंकि मक्खियाँ चीटियाँ बैठती हैं। सुन्दर दय स्वच्छता पसन्द करता है।

स्वच्छता सम्बन्धी निषेधात्मक आदेशों को प्रायः अंग्रेज लोग तो मानते हैं, वह लोग भूल नहीं करते, परन्तु अनेकोंभ ारतीयम ूर्खअ शिक्षितब ालकह ीन हीं,ग वाँर देहाती ही नहीं, बल्कि शिक्षित युवक वृद्ध भी नियम, आदेश, निषेध विरुद्ध वही काम करते हैं– जो मना

लिखा होता है। यह पशु प्रकृति के लक्षण हैं। अनेकों व्यक्ति असावधानी मूर्खतावश भूल करते हैं। अनेकों

यदि तुम स्वादिष्ट भोजन में तथा किसी शरीर में आसक्त हो कर उसके संयोग में अथवा अन्य मन के अनुकूल भोग–विलास में तृप्ति मानोगे, तब तो पशुता को ही प्रबल बनाते रहोगे।

यदि तुम अहंकार को धन और मान से तृप्ति करना चाहोगे, तो आसुरी प्रकृति की ही प्रधानता रहेगी।

यदि तुम मानवता की जागृति में दिव्यता को उतारना चाहते हो, तब तुम्हें आरम्भ से ही साधना का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि साधना द्वारा ही सेवा पूर्ण होती है। सेवा की पूर्णता में दिव्यता उतरती है।

सेवा की पूर्णता के लिए शरीर, श्रमी, मन संयमी, दय उदार, बुद्धि विवेकपूर्ण और अहंकार राग, द्वेष, ईर्ष्या, मोह, अभिमान शून्य होना चाहिए।

सभी विकारों से रहित और निष्काम होकर सेवा धर्म को पूर्ण करना दुष्कर है। फिर भी तुम अपने से अधिक विद्वानों का, सदगुण सम्पन्न आदर्श सज्जनों का सुसंग करो। देखो ! संग के परिणाम से मिट्टी फूल बन जाती है, मलमूत्र दुर्गन्धित गन्दगी खाद बन कर सुगन्ध में परिणत हो जाता है।

जो मनुष्य पशु जैसा जीवन व्यतीत करता है, वही संग से परिवर्तित होकर दिव्यता उपलब्ध करता है।

अपना अध्ययन करो! जो कुसंग या जो व्यसन अथवा जो बुरी आदत या कुटैव या जिस दुखदायी भावना को तुम छोड़ नहीं सकते, जिसे भुला नहीं सकते, जिस दोष को हटा नहीं सकते तुम जिस दुष्टता को, नींच वृत्ति को तुम रोक नहीं सकते, उसी के गुलाम हो, दास हो, फिर भी, दूसरों के सामने अभिमानवश अकड़ते हो, तो कितनी बड़ी मूर्खता है।

किन्तु मूर्ख को समझाना पत्थर में कीला गाड़ना है। मूर्ख और मुर्दा ही अपने विचार नहीं बदलते।

जो विद्वान अपनी मूर्खता से अशान्त होता है, वही मूर्खता का त्याग कर देता है और विवेक में जाग्रत हो कर प्रेम को पूर्ण करता है, सेवा करते हुए अपना सौभाग्य समझता है।

मनुष्य के भीतर जो कुछ अधिक होता है वही दूसरों को देता है। निरीक्षण करो! तुम प्रिय देते हो या अप्रिय! जो कुछ तुम्हारे भीतर अधिक मात्रा में होगा, वही निकलेगा।

तुम मूढ़ता, प्रमाद वश भले ध्यान न दो, परन्तु परिणामदर्शी गुरूजनों का यह अनुभव सत्य ही है कि जो कुछ दूसरों के साथ भला बुरा करोगे, वही तुम्हारे साथ भी होगा।

कभी कभी दूसरों की ओर से ऐसा कुछ व्यवहार और बर्ताव तुम्हारे साथ हो जाता है, जो कि तुम नहीं चाहते औरउ स‹ यवहारस`त ुमद ुखीह ोकरद ूसरोंक ोब ुरा समझतेह ो,प रन्तु किसीक`म तस`त ुम्हारेस ाथव ही हुआ है, जो कभी तुमने किसी के साथ किया होगा, इसीलिए अब तो आगे के लिए सावाधान हो जाओ।

तुम किसी से ईर्ष्या द्वेष न करो, ोध में हो कर किसी को कठोर वाक्य न कहो, अपमान न करो किसी से घृणा न करो, धनमद में, विद्यामद, अधिकार मद, कुल मद, बलमद में उन्मत्त होकर किसी को दुःख न दो। किसी को दुःख पहुंचाकर तुम्हें जो सुख मिलेगा, उसका अन्त कभी दुःख में ही होगा।

किसी प्रकार के बलमद से अन्धी बुद्धि द्वारा यह समझ में नहीं आता कि अपने बड़ों को गुरूजनों को प्रणाम करने से उन्हें जो प्रसन्नता होती है वह

शुभाशीर्वाद का काम करती है। बड़ों को नमन करना मान देना, सहज शुभ कर्म है।

हैं। आज के समाज में अधिक संख्या में मनुष्य अंधकार की दिशा में भाग रहा है प्रकाश की ओर नहीं है।

केवल धन की सुखोपभोग की एवं मान और नाम की ही तृष्णा की पूर्ति मनुष्य चाहता है, जीवन के लक्ष्य का ज्ञान ही उसे नहीं है।

सद् शिक्षा

मनुष्य इसलिए असत् पथ में है, क्योंकि सद्शिक्षा नहीं मिल रही है और सदशिक्षा इसीलिए सुलभ नहीं है क्योंकि प्रायः सद्शिक्षक भी कहीं बिरले ही हैं यदि सद्शिक्षक भी सुलभ हो जाएं, तब शिक्षार्थी विद्यार्थी का सुपात्र होना आवश्यक है।

विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने वाला यदि आलसी है, ग़लत को ही सही मानने वाला प्रमादी है, यदि उसे माता–पिता के धनी होने का या उच्च पदाधिकारी होने का, कुल का, बल आदि का अभिमान है, वह बलों का दुरुपयोग, ईर्ष्या, द्वेष, ोध, कलह में करता है, यदि वह असंयमी है, दुर्व्यसनी है, कहीं आसक्त है, शरीर से रोगी है, तब वह शिक्षा एवं विद्याध्ययन के लिए सुपात्र नहीं है,

फिर भी यदि मानवी अंश कुछ भी जाग्रत हो जाए, तो सुपात्र हो सकता है।

जो विद्यार्थी शिक्षार्थी चाहे वह बालक हो या युवक हो, या वृद्ध हो यदि उसे सदाचार प्रिय लगता है तथा जो व्यर्थ वार्ता से, व्यर्थ भ्रमण से, व्यर्थ चिन्ता से, समय को, शक्ति को, बचा लेता है, जो किसी रूप में शब्द में तथा वस्तु व्यक्ति में आसक्त नहीं है, जो कष्ट–सहिष्णु है, ब्र मचर्य व्रत पालन में तत्पर हैं, जो विनम्र शान्त स्वभाव वाला है, जो शिक्षक में श्रद्धा एवं पूज्य भाव रखता है और आज्ञा पालन करता है, जिसे अध्ययन में उत्साह है, वही सुपात्र है।

जो कोई इस ''गुरु संदेश'' को पूर्णतया पढ़ लेगा और अपने स्वयं का अध्ययन करते हुए जो कुलक्षणों को देख ले और सुपात्रता के सुलक्षणों को देखकर गर्वित न होगा, वह सदाचारी, सज्जनों के संग से शीघ्र ही शुभ संकल्प करते हुए सुपात्र हो सकता है।

मनुष्य को अंहकार में घिरा रहने के कारण भले ही ज्ञान न हो, फिर भी उसका अनन्त शक्ति से सम्बन्ध है और उसी शक्ति से प्रत्येक संकल्प को पूरा करता है।

जिस शक्ति से अशुभ संकल्प पूरे होते हैं, उसी के द्वारा शुभ संकल्प भी पूरे होते हैं। इसलिए जो दुराचारी दुर्व्यसनी है, वही सदाचारी संयमी हो सकता है। जो पशुमय है वही मानव बन कर प्रभुमय हो सकता है, जो कृपण, कठोर, हिंसक है वही सुसंग द्वारा शुभ संकल्पवान हो कर उदार विनम्र प्रेमी अहिंसक बन सकता है।

जो कोई जीवन से प्रेम करता हो, जीवन को सुन्दर बनाना चाहता हो, वह सुसंग में आकर शुभ संकल्प करे, विचलित होने पर भी बार–बार संकल्प करे, तो अवश्य सफलता मिलेगी और अन्त में सिद्धि मिलेगी।

अनेकों उपदेशक मनुष्य देह की बड़ी महिमा बताते हैं, मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ सिद्ध करते हैं। यह यथार्थ भी है, परन्तु प्रायः देखा जा रहा है कि पशु पक्षी से इतने पाप अपराध नहीं बन रहे हैं जितना अनेकों मनुष्यों से बन रहे हैं क्योंकि मनुष्य पशु की भाँति बलवान तो नहीं है परन्तु बुद्धिमान है और कदाचित शिक्षित भी है।

शिक्षित मनुष्य जितनी चतुरता से छल कपट दम्भ पाखण्ड द्वारा अपनी कामना वासना की पूर्ति कर लेता है, उतनी चतुरता अशिक्षित में नहीं होती, इसीलिए

मनुष्य की देह पाना, बुद्धिमान होना महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि महान बुद्धिमानों विद्वानों को कहीं असुर एवं

कुछ सद्‌गुण, सद्ज्ञान, सत्य प्रेम प्राप्त हो सकता है उसकी प्राप्ति के लिए कोई भी वृद्ध या युवक या बालक भी एक समान अधिकारी है क्योंकि साधना एक समान है।

उस साधना की पूर्णता सेवा द्वारा, त्याग द्वारा और प्रेम द्वारा ही होती है। इस साधना की शक्ति उसी को सुलभ होती है, जो अवकाश पाते ही शान्त होता है, शून्य होता है, केवल स्वयं की चेतना में जाग्रत रहता है।

सेवा वही शुभ सुन्दर है, जिसके बदले में किसी प्रकार के धन की भोग की तथा मान की चाह न हो।

त्याग वही शुभ सुन्दर है, जिससे दोषों का अन्त हो तथा अशान्ति का अभाव हो और उस त्याग का कोई अहंकार न हो।

प्रेम वही सर्वोत्तम है, जिससे शुभ सुन्दर पवित्र का दान ही दान हो, जहाँ लेने की कोई आवश्यकता ही न हो। तुम प्रेमकर्ता न बनो बल्कि प्रेम में होकर द्रष्टा बनो।

तुम अपने जीवन को पूर्ण सुन्दर निर्दोष देखना चाहते हो तो, संयम के द्वारा शक्ति प्राप्त करो। संयम को पूर्ण

बनाना चाहते हो तो व्यर्थ चिन्तन व्यर्थ वार्ता, व्यर्थ कर्म न करते हुए सार्थक को ही पूर्ण करो।

किसी कर्म का अन्त होते ही नया कर्म आरम्भ होने के पूर्व शान्त होकर, शून्य रहकर जो स्वतः देह के भीतर हो रहा है उसे देखो! शरीर इन्द्रियाँ मन तथा बुद्धि को देखते–देखते देखने वाले स्वयं को देखो।

तुम किसी के द्वारा प्रेम चाहो नहीं और प्रेमकर्ता न बनो, प्रत्युत प्रेम में होकर स्वतः ही होने वाले दान को उदारता, नम्रता, सहिष्णुता आदि दैवी गुणों को देखते रहो।

आप का अनेकों व्यक्तियों से संग होगा। कोई अनुकूल होगा, कोई प्रतिकूल होगा, कोई उदार होगा, कोई लोभी होगा, कोई प्रीति करेगा, कोई द्वेष ोध में आकर कष्ट पहुँचाएगा–आप सभी से शिक्षा प्राप्त कीजिए। आप सावधान रहकर देखिए। लोभी की, मोही की, सुखासक्त की अभिमानी ईर्ष्यालु द्वेषी ोधी की आलसी प्रमादी की मनः स्थिति कैसी है।

वह कभी भयातुर कभी चिन्तित अशान्त है दुखी है उन्मत्त है। उसके प्रत्येक सुख के पीछे दुख लगा है, हर्ष

के पीछे शोक लगा है, उसका लाभ हानि से घिरा है, उसकी दूसरों से मिलने वाली अनुकूलता प्रतिकूलता से घिरी है।

दिव्य शक्तियों के योग के लिए अवसर मिलते ही शान्त होना, शून्य होना प्रत्येक बालक युवक वृद्ध के लिए सरल है, क्योंकि शान्त एवं शून्य होने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता, बल्कि तुम जो कुछ भी कर रहे थे, उसके समाप्त होते ही जब तक दूसरा कार्य आरम्भ नहीं करते हो, तब तक कुछ क्षण बिना कुछ किए ज्यों के त्यों रुके रहो, कोई विचार संकल्प न उठाओ, फिर जो शेष है, वही नित्य चेतन ज्ञान स्वरूप अखण्ड स ा है, वही प्रत्येक प्राणी का परमाश्रय है, उसी से प्रत्येक गति का आरम्भ होता है, उसी में अन्त होता है, उसी में संसार के समस्त कर्म चल रहे हैं। उसी में सभी को विश्राम मिलता है। वह अखण्ड है, अनन्त है, उसका कोई नाम नहीं है।, इसलिए उसे किसी नाम से पुकार सकते हो। उसका कोई रूप नहीं है, इसलिए किसी भी रूप में उसे अनुभव कर सकते हो, वह तो वहीं उपस्थित है जहाँ तुम हो।

वह न हिन्दू है, न मुसलमान है, न जैन है, न सिख है,

न ईसाई है, न यहूदी है। वह तो सभी कुछ के पीछे सत्ता केरू पम ें,ज ीवनक `रू पम ें,च `तनाक `रू पम ें,ज्ञ ान

सन्त-उपदेश

सन्त दर्शन पुस्तक में श्री १०८ श्री नागा निरंकारी जी महाराज गृहस्थों को उपदेश दे रहे हैंः—

1. वीरता धारण करो, बिना वीरता के न योग होता है न गृहस्थी निर्भय बनो
2. कोई तुम्हारी बुराई करे तो उसे तीन बार माफ कर दो, यदि वह फिर भी न माने तो उसे दण्ड दिलाओ या दो।
3. **स्त्रियों के प्रति—**घरक ेप्ेमस ेस म्भालो,अ ांखम ें सदैव लज्जा रखो, कपड़े का परदा बेकार है। वीरता धारण करो, आत्मा रक्षा के लिये अस्त्र रखो।
4. देह से होने वाले पाँच पुण्यों में भी इसी पुस्तक में प्रथम पुण्य, प्राणियों की रक्षा तथा यथा शक्ति सेवा करना लिखा है

यह सब पढ़ते सुनते हुये भी आज हमारे युवक और गृहस्थी, अपने घरों में लाखों रुपये की व्यर्थ विलासिता सामग्री तो रख लेंगे, परन्तु परिवार, पड़ोसी, और राष्ट

की रक्षा के लिये अस्त्र शस्त्र का अभ्यास कर, लायसंस द्वारा उसे प्राप्त कर, धारण नहीं करेंगे। क्या यह प्रमाद नहीं? जबकि हमारे तमाम देवी, देवता, अवतार, दुर्गा शक्ति आदि सभी शस्त्र धारी हैं, जन कल्याणकारी हैं।

प्रार्थना

मेरे नाथ!

आप अपनी सुधामयी, सर्व—समर्थ, पतितपावनी,
अहैतुकी कृपा से मानव—मात्र को विवेक का
आदर तथा बल का सदुपयोग करने की
सामर्थ्य प्रदान करें एवं हे करुणासागर!
अपनी अपार करुणा से शीघ्र ही
राग—द्वेष का नाश करें, सभी
का जीवन सेवा, त्याग, प्रेम
से परिपूर्ण हो जाय!

ँ आनन्द! ँ आनन्द! ँ आनन्द!

जीवन को सभी के लिए, उपयोगी होने के उपाय

1. निर्मम, निष्काम, अचाह और अप्रयत्न होना अपने लिए
2. किसी को बुरा न समझना, किसी का बुरा न चाहना और किसी के साथ बुराई न करना जगत के लिए।
3. मैं प्रभु का हूँ और प्रभु मेरे हैं, इस महामन्त्र को अपनाने से प्रभु के लिए जीवन उपयोगी हो जाता है।

प्रार्थना

तुम्हीं में यह जीवन, जिए जा रहा हूँ।
जो कुछ दे रहे हो, लिए जा रहा हूँ।।
तुम्हीं से चला करती प्राणों की धड़कन।
तुम्हीं से सचेतन अहंकार तन मन।।
तुम्हीं में यह दर्शन किए जा रहा हूं।
असत के सदा आश्रय हो तुम्हीं सत।
पिलाते हो जो कुछ पिये जा रहा हूँ।
जहाँ भी रहूँ ध्यान में तुम को देखूँ।।
पथिक मैं यह अरजी दिए जा रहा हूँ।

पुरुषोत्तम मास चैत्र संवत् २०२१
'गंगा छवि' परमट कानपुर में

कर्तव्यनिष्ठ त्यागी तपस्वी योगी तथा भक्त नहीं होने देती, इसीलिए सुखी दशा में सेवा का व्रत लेना चाहिए।

सेवा करने वाले सेवक में पांच विशेषतायें होनी चाहिए। **शरीर श्रमी हो, आलस्य न रहे, मन इन्द्रियों में संयम रहे, सदाचार में कमी न रहे, दय में भरपूर प्रीति रहे और बुद्धि में यथार्थ विवेक रहे।**

श्रम, संयम, सदाचार, प्रीति विवेक इनमें किसी की कमी रहते सेवा पूर्ण नहीं होती।

किसी सेवक या सेविका के मन में यदि सेवा के बदले में धन की, मान की, भोग की चाह है तब तो उसकी सेवा स्वार्थ में बदल जायेगी।

लोभी, मोही, अभिमानी, ईर्ष्यालु, द्वेषी, ोधी सेवा नहीं कर पाता।

किसी विरक्त तथा प्रपंच से दूर रहने वाले सन्त महात्मा के संग से कर्तव्य धर्म का अथवा

कल्याणकारी साधना का ज्ञान होता है।

अतः विरक्त सन्त की सेवा करनी चाहिये जिसकी सेवा करनी हो उसकी आज्ञा के बिना कुछ न करना चाहिए।

सेवा से त्याग पूर्ण होता है, त्याग पूर्ण होने पर प्रेम पूर्ण होता है, प्रेम की पूर्णता में ही भक्ति पूर्ण होती है।

इन्द्रियों द्वारा विषय–वृत्ति को रोकने से, वाणी द्वारा मौन होने से शक्ति संचित होती है। मन की वृत्तियों के निरोध से शान्ति सुलभ होती है। बुद्धि की वृत्ति को रोकने, स्थिर करने से तत्व का ज्ञान होता है।

वस्तुओं, व्यक्तियों में बिखरी हुई प्रीति को समेटने में भगवान को ही अपना मानने से भक्ति सुलभ होती है।

जब तक अपने आपका यथार्थ निरीक्षण नहीं होता तब तक भीतर की भूलों का, दोषों का ज्ञान नहीं

होता।

जब कभी सुख अथवा दुःख प्रतीत हो तभी अपना निरीक्षण करना चाहिए, क्योंकि सुखः दुःख की वेदना होते ही समता भंग होती है, राग द्वेष की भूमिका में विषमता आती है, विषमता में ही अनेकों दोष पुष्ट होते रहते हैं। यथार्थ तत्व ज्ञानी विवेकी वही है जो समता से न डिगे।

जिसकी बुद्धि सत्य परमात्मा में स्थिर है जिसका मन सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान में लगा है वही सदा सम शान्त रहता है।

चर्चा चाह चिन्तन द्वारा जिससे सम्बन्ध होता है उसी की प्राप्ति होती है।

भगवद् चर्चा कथा सुनने से चाह प्रबल होगी चाह प्रबल होने पर स्वतः चिन्तन होगा।

जप स्मरण चिन्तन ध्यान यही भक्ति योग के साधन हैं।

इतना अधिक नाम जप होना चाहिए कि स्वतः स्मरण होता रहे, स्मरण की प्रगाढ़ता में स्वतः चिन्तन

भय के रहते, भेद भाव के रहते, तृष्णा के रहते बुद्धि स्थिर नहीं हो सकती, चित्त शान्त नहीं रह सकता; संघर्ष विषमता नहीं मिट सकती।

जप तप पूजा पाठ तीर्थ सेवन अध्ययन तभी सार्थक हैं जब मन अचंचल हो चित्तशान्त हो, बुद्धि स्थिर हो परमात्मा से ही प्रीति हो।

धर्मग्न्थप ढ़तेर हनेस`उ पदेशस ुनतेर हनेस` विचारों में परिवर्तन तो होता है परन्तु लोभ मोह अभिमान काम ोधादि विकार बने ही रहते हैं।

काम ोध ईर्ष्या द्वेषादि विकारों को जितना अधिक दुहराया जाता है उतना ही अभ्यास दृढ़ हो जाता है वह सहज कर्म बन जाता है।

अभ्यास को बदलने के लिये विपरीत अभ्यास और विचार को बदलने के लिये प्रतिकूल विचारों की पुनरावर्ती आवश्यक है।

जिस वस्तु को अथवा जिस व्यक्ति को देखते ही अपनी होने की स्मृति होती रहती है वहीं पर 'अपना

कुछ भी नहीं है, सब परमेश्वर का ही है' यह स्मृति होती रहे, तब मोह लोभ अभिमान समाप्त हो सकता है।

जब कभी 'मैं हूँ, यह मेरा है' — यह भाव उदय हो उसी समय 'प्रभु केवल तुम्हीं हो, यह सब तुम्हारा ही है' — यह याद बनी रहे।

'यह मैं हूँ यह मेरा है' इसके प्रतिकूल हर समय 'प्रभो तुम्हीं तुम हो, यह तुम्हारा ही है, अपना कुछ भी नहीं है। अपने तो एक मात्र सर्वस्व तुम्ही हो'— ऐसा सदैव ज्ञान बना रहे।

जहाँ मैं और मेरापन की स्मृति रहती है वहीं पर उतनी ही बार 'प्रभो तुम्हीं सर्वाश्रय हो, यह सब कुछ तुम्हारा ही है— यही स्मृति दृढ़ नहीं हो सकी तब तो लोभ मोह अभिमान अहंकार नहीं छूटेगा।

सन्त संग स्वाध्याय सत् कथा श्रवण के द्वारा सत परमात्मा का और असत अनित्य का ज्ञान प्राप्त करना है, अशुभ असुन्दर अपवित्र का त्याग करना है,

शुभ सुन्दर पवित्र का दान करना है, शक्ति संचय के लिएस ंयमीर हनाह ै,प ुण्योंक ेस ुरक्षितर खनेक` लिये और पुण्य के संचय के लिये सुखोपभोग से विरक्त होना है, सामर्थ्य के लिये दुर्बलता दूर करने के लिये तपव्रत का आश्रय लेना है। निर्भय निश्चिन्त रहने के लिए नित्य प्राप्त परमात्मा पर विश्वास करना है। ज्ञान प्राप्ति के लिए श्रद्धावान् होना है।

इधर उधर भटकना छोड़कर मनुष्यों में विद्यमान परमेश्वर को जान लेना है।

भूल भ्रान्ति अज्ञान से मुक्त होकर पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना है।

जप, सन्ध्या, पूजा, पाठ को ही पूर्ण साधन न मान कर सत्य, दया, श्रम, सेवा, त्याग, प्रेम में आस्था श्रद्धा करना है।

बाहर के तीथो के यात्रा से यदि पवित्रता में कमी दीखती है तब सत्य, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह, सर्व भूत

दया, सत्यवादिता, ज्ञान, तप इन मानस तीथो का सेवन करना है।

मुक्ति होती है।

ज्ञान स्वरूप से प्रीति करना ही मोक्ष प्राप्ति का साधन है।

भगवान से प्रीति तभी होगी जब उन्हें अपना सर्वस्व मानोगे। अपना सर्वस्व तभी मान सकोगे जब भगवान से कुछ भी न चाहोगे।

उनसेक ुछत भीन च ाहोगेज बद ेह,म नअ ादि वस्तुओं को अपनी न मानोगे।

जिस भजन के पीछे दृढ़ आस्था न हो, अडिग विश्वास न हो, अटूट श्रद्धा न हो, प्रभु के प्रति आत्मीयता न हो वह भजन नहीं कोई शुभ कर्म भले ही होगा।

साधक की आवश्यकतायें जितनी कम होंगी उतनी प्रियतम प्रभु से निकटता होगी।

बाहर से जो सुन्दर दीखता है वह सदैव श्रेष्ठ नहीं रहता किन्तु जो कुछ श्रेष्ठ है वह सदैव सुन्दर

रहेगा।

प्रत्येक कार्य, कार्य के आरम्भ और अन्त में पूर्ण शान्त होकर सत का संग करो यही सन्ध्या है।

परमात्मा को भिन्न न मानने से, चाह रहित होने से, कुछ न करके शान्त हो जाने से स्वतः सत का ही संग शेष रहता है।

मन को दय के भीतर आत्मस्वरूप में स्थिर करना ध्यान योग है।

अहं रूप से स्फुरित दय में चैतन्य मयी ज्योति है, इसी का ध्यान करना चाहिये।

अज्ञान बन्धन के हटते ही जीव ही शिवस्वरूप है।

दीर्घकाल के ध्यान से मन सूक्ष्म होता है। सूक्ष्म निश्चल मन द्वारा ही आनन्द का अनुभव होता है।

सभी को अपना मानों तो राग द्वेष नहीं रहेगा

एक प्रभु को अपना मानो तो त्याग प्रेम पूर्ण होगा।

किसी को अपना न मानो तो बन्धन से, मोह से छुटकारा मिलेगा।

मन को अपना मान कर कभी लगा नहीं सकते, लगा है तो हटा नहीं सकते अतः उसे भगवान का मान कर समर्पित कर दो।

मन करण है कर्ता नहीं है। कामना मन में नहीं है; अपने में ही है अतः कामना का त्याग करना होगा।

इन्द्रिय ज्ञान, राग द्वेष में आबद्ध करता है। बुद्धि ज्ञान, त्याग प्रेम प्रदान करता है। आत्मा में अनन्त शक्ति सामर्थ्य एवं अनन्त ज्ञान विद्यमान है। बुद्धि योग द्वारा उसकी जाग्रति होती है।

जो भोग में ऐश्वर्य में आसक्त है वह बुद्धि योगी नहीं हो सकता।

जिनका चित्त भोगों की कामना से आतुर अधीर रहता है, उनके लिये सन्त एवं भक्तों द्वारा भगवान की लीलाओं का मनन कीर्तन संसार सागर से पार जाने का जहाज है।

कभी कभी ऐसे शान्त हो जाओ कि कुछ भी न करो; यदि शान्त होने पर मन की चंचलता प्रतीत हो

मानवता

पराया दर्द अपनाये उसे इन्सान कहते हैं।
किसी के काम जो आये उसे इन्सान कहते हैं।।

कभी धनवान है कितना कभी इन्सान निर्धन है।
कभी सुख है कभी दुख है इसी का नाम जीवन है।
जो मुश्किल में न घबराये उसे इन्सान कहते हैं।।

अगर गलती रुलाती है तो ये राहें भी दिखाती है।
मनुज गलती का पुतला है ये अक्सर हो ही जाती है।
जो करले ठीक गलती को उसे इन्सान कहते हैं।।

ये दुनियाँ एक उलझन है कहीं धोखा कहीं ठोकर।
कोई जीता है हँस-हँस कर कोई जीता है रो रोकर।
जो गिरकर भी सम्भल जाये उसे इन्सान कहते हैं।।

यूँ भरने को तो दुनिया में पशु भी पेट भरते हैं।
लिये इन्सान का दिल जो वो नर परमार्थ करते हैं।
'पथिक' जो बाँट कर खाये उसे इन्सान कहते हैं।।

समर्पण

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में, और हार तुम्हारे हाथों में।।

मेरा निश्चिय बस एक यही, एक बार तुम्हें पा जाऊँ मैं।
अर्पण कर दूँ दुनियाँ भर का, सब प्यार तुम्हारे हाथों में।। अब सौंप..

जो जग में रहूँ, तो ऐसे रहूँ ज्यों जल में कमल का फूल रहे।
मेरे सब गुण-दोष समर्पित हों, करतार तुम्हारे हाथों में।। अब सौंप..

यदि मानुष का मुझे जनम मिले, तो तेरे चरणों का पुजारी बनूँ।
इस पूजक के इक-रग रग का, हो तार तुम्हारे हाथों में।। अब सौंप..

जब-जब संसार का कैदी बनूँ निष्काम भाव से कर्म करूँ।
फिर अन्त समय में प्राण तजूँ, निराकार तुम्हारे हाथों में।। अब सौंप..

मुझमें तुझमें बस भेद यही, मैं नर हूँ तुम नारायण हो।
मै। हूँ संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में।। अब सौंप..